

प्रस्तावित शिक्षा नीति

संभावनाएं और चुनौतियां

ऋषभ कुमार मिश्र

प्रस्तावित शिक्षा नीति लोकतांत्रिक भागीदारी द्वारा रूपाकार होने की अवस्था में है। इस नीति का मसौदा प्रत्येक भारतीय की राय के लिए सार्वजनिक किया गया है। इस मसौदे को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि एक यूटोपियन भारतीय समाज और इसकी शिक्षा व्यवस्था के लिए सुंदरतम शब्दों, मुहावरों और तरीकों के साथ एक नई व्यवस्था रूपाकार होने जा रही है। यह नीति वर्तमान और भविष्य (2030-35) के बीच राज्य के रुख को स्पष्ट करती है। इस नीति में एक सकारात्मक सोच निहित है जो शिक्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के निजी और नागरिक जीवन को समृद्ध करना चाहती है। नई शिक्षा नीति के प्रस्तावित मसौदे के आरंभ में ही स्पष्ट किया गया है इसका लक्ष्य शिक्षा द्वारा भारत के प्रत्येक व्यक्ति का सर्वांगीण विकास है। जहां-जहां सर्वांगीण विकास का उल्लेख है वहां प्रत्यक्षतः या अप्रत्यक्षतः इस विकास को ज्ञान आधारित समाज, 21वीं सदी की दुनिया की दक्षताओं-आलोचनात्मक और सृजनात्मक चिंतन, निर्णय लेना आदि के साथ चौथी औद्योगिक क्रान्ति की तैयारी और संवैधानिक मूल्यों, खासकर समानता, के सापेक्ष परिभाषित किया गया है। इस वैश्विक दृष्टि के साथ इतिहास बोध और सांस्कृतिक अस्मिताओं के पक्ष को पूरा स्थान देकर यह प्रयास किया गया है कि परंपराओं, इतिहासों, संस्कृतियों और मूल्यों के साथ 21वीं सदी की जरूरतों को पूरा किया जाए। इन दोनों आयामों का संतुलन ही 21वीं सदी का भारत बनाएगा ऐसी मान्यता इस नीति में निहित है। यह मान्यता दुधारी तलवार के समान है। यदि नीति के क्रियान्वयन में किसी एक के पक्ष में झुकाव हुआ तो वह भारतीयता के सामासिक अर्थ का विग्रह कर देगा। यह भी ध्यान देना आवश्यक है भारतीयता का असल अर्थ उसके बहुवचन में है। देखना है कि यह नीति इस बहुवचन को कैसे क्रियान्वित करती है? इस प्रस्तावित नीति को दो दृष्टियों से समझने की आवश्यकता है। प्रथम इस नीति की कौन सी संस्तुतियां 'नए भारत' के लिए नयी शिक्षा प्रणाली हेतु हैं? दूसरा, ये संस्तुतियां वर्तमान भारत के एक नए भविष्य की कल्पना किस रूप में करती है? आखिरी शिक्षा नीति वर्ष 1986 में आई थी। तब से अब तक का भारत बदल चुका है। जन शिक्षा का प्रसार, स्कूली शिक्षा का मौलिक अधिकार, उच्च शिक्षा का व्यावसायिक ढांचा, निजी क्षेत्र का पर्याप्त प्रसार, शैक्षिक प्रशासन और वित्त में सुधार व बढ़ोत्तरी के प्रयास आदि के आंकड़े इसकी गवाही देते हैं। इसके साथ ही वर्तमान में नई संभावनाएं और चुनौतियां भी हमारे सामने खड़ी हैं। उदाहरण के लिए-नगरीकरण लगातार बढ़ रहा है। हम पर्यावरणीय संकट से जूझ रहे हैं। क्षेत्रीय विषमताएं बढ़ी हैं। बेराजगारी के आंकड़े भी चिंताजनक हैं। वैश्विक राजनीतिक-आर्थिक परिस्थितियां इस तरह निर्मित हो चुकी हैं कि वैश्विक स्तर पर सुदृढ़ स्थिति के बिना आर्थिक अवसरों का लाभ नहीं उठा सकते हैं। सामाजिक और वैचारिक स्तर पर अस्मिता की राजनीति नई चुनौतियां खड़ी कर रही है। आज हम डिजिटल क्रांति को स्वीकार कर चुके हैं लेकिन इसकी लागत अभी भी अधिक है। शिक्षार्जित ज्ञान और कुशलता के आधार पर 'हैक्स' और 'हैक्स नॉट' का नया वर्ग पैदा हो चुका है। इस 'नए भारत' के लिए शिक्षा एक 'लोकवस्तु' है, इसे स्वीकार करते हुए प्रस्तावित नीति इसकी उपलब्धता, गुण और व्यवस्था का दायित्व राज्य को सौंपती है। इस नीति

को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि नीति निर्माताओं के दिमाग में एक ऐसा काल्पनिक औद्योगिक समाज बैठा है जो लगभग दो सदी की संघर्ष-यात्रा के बाद खेतीहर समाज के केचुल को छोड़कर 'वैश्विक' हो चुका है। इस वैश्विक समाज के नागरिक मॉडल को यह शिक्षा नीति सार्वभौमिक करना चाहती है।

शिक्षा के 'स्थायी संकटों' के प्रति रुख

प्रस्तावित नीति 'नए भारत' के स्थायी शिक्षा संकटों- परीक्षा केन्द्रित रटंत प्रणाली, अध्यापकों की चुनौतियां और समस्या, शोध का अभाव, संस्थानों में तालमेल- से मुक्त करना चाहती है। शिक्षा नीति 'नए भारत' में विकास के लिए आवश्यक सांस्कृतिक पूंजी के प्रसार को मध्यमवर्ग तक सीमित न रखकर वहां तक पहुंचाना चाहती है जहां इसे खरीदने की क्रय शक्ति नहीं है, जहां इसकी सुविधा नहीं है और इसके अभाव में जहां विकास के बाधक फल-फूल रहे हैं। यही इस नीति की सुंदरता और सीमा है। उदाहरण के लिए जिन आयामों और गुणों को इस शिक्षा नीति में मानव विकास का संकेतक माना गया है उन्हें भारत का वृहद् मध्यम वर्ग आधुनिक प्रगतिशील स्कूलों व उच्च शिक्षा के चुनिंदा श्रेष्ठ केन्द्रों में खरीद रहा है लेकिन जो बड़ा जनसमुदाय इसके दायरे से बाहर है वहां भी इस सांस्कृतिक पूंजी को पहुंचाने का नैतिक और कानूनी दायित्व राज्य को सौंपना इस नीति का ध्येय है। इसके लिए यह नीति व्यवस्था के स्तर पर क्रियान्वयन, जवाबदेही और निगरानी की विधियां सुझाती है। राष्ट्रीय शिक्षा आयोग, अभिक्षमता परीक्षण, विशेष शिक्षा क्षेत्र आदि इसके उदाहरण हैं। देखना है कि ये प्रस्तावित व्यवस्थाएं परिकल्पित गुणों को कैसे कार्यरूप देंगी?

इस नीति में औपचारिक शिक्षा की एक नयी रूपरेखा सुझाई गई है जिसके अंतर्गत किसी भी व्यक्ति के लिए 3 वर्ष की आयु से 18 वर्ष की आयु तक शिक्षा का प्रबंध है। इस नीति का उल्लेखनीय पक्ष है कि पूर्व विद्यालयी शिक्षा को शिक्षा के अधिकार कानून और 'पोषण के साथ सीखने' की आधारभूत मान्यता के रूप भी औपचारिक शिक्षा से जोड़ा गया है। स्कूली स्तर पर यह नीति आधारभूत दक्षताओं के विकास की चुनौतियों से हर हालात में पार पाना चाहती है। यद्यपि नीति में इसके लिए यथोचित उपाय दिए गए हैं लेकिन ये उपाय मुहावरेदार अधिक हैं। इनमें आंतरिक विसंगतियां भी हैं। जैसे- इस नीति में गुरुकुल, मदरसों और परिवारों, सीखने के सांस्कृतिक तरीकों का संदर्भ लिया गया है। उनकी विशेषताएं बताई गई हैं। यह भी सुझाव है कि इन्हें आने वाले समय में स्कूल की संस्था में स्थापित कर दिया जाए। इस सुझाव के मूल में ही विरोधाभास है। गुरुकुल या परिवार, नौकर-हाकिम जैसे संबंधों से नहीं चलते। न ही वे समाज को ज्ञान बांटते हैं। ऐसी अधिगम पारिस्थितियों में सबके ज्ञान को महत्व मिलता है जिसे ठोस और विभाज्य दक्षताओं में नहीं देख सकते। ऐसे ही स्कूलों के लिए नेशनल ट्यूटर प्रोग्राम और सामाजिक कार्यकर्ताओं के सहयोग जैसी संस्तुतियां भी विसंगति युक्त हैं। ये भूमिकाएं शिक्षकों के समांतर होंगी, परिणामस्वरूप उन पर हावी होंगी या अनुषंगी बनकर पैरा-शिक्षकों जैसी समस्याएं पैदा करेंगी? ऐसे ही उपाचारात्मक शिक्षण के लिए प्रयोग भी यथार्थ से दूर अति आदर्शवादी जान पड़ते हैं। स्कूल स्तर पर मनोवैज्ञानिक प्रयोगों का आग्रह भारतीय नीतियों की एक सीमा रही है। यह नीति भी इस सीमा से ही जूझती नज़र आ रही है। मूल समस्या सीखने वाले का संदर्भ, सिखाने वाले की मंशा और सीखने की सामग्री के बीच का तालमेल है। इसका रास्ता व्यक्ति और संस्था के स्तर पर जिस स्वायत्तता और आजादी की मांग करता है उसकी संभावनाएं इस नीति में है लेकिन वे किस सीमा तक हमारे सांस्कृतिक संदर्भों के साथ संबंध बना पाते हैं यह विचारणीय है। ऐसे ही उच्च शिक्षा में अंतरानुशासनिक और लिबरल विषयों की शिक्षा द्वारा नई युवा शक्ति को तैयार करने का लक्ष्य है जिसकी शोधपरक चिंतन दृष्टि जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी व्यक्ति, समाज और देश को मजबूत करे। उच्च शिक्षा वाला अध्याय पढ़ते समय कई बार ऐसा लगता है कि नीति निर्माताओं ने अपनी खुद की शिक्षा और पेशेवर जीवन का मूल्यांकन कर उसमें जो अभाव रह गया था उसकी प्रतिपूर्ति के लिए यह दस्तावेज तैयार किया है। इस दस्तावेज के प्रत्येक खंड में जिन लक्ष्यों का उल्लेख किया गया है वे बेहद रूमानी, आकर्षक और उम्मीद जगाने वाले हैं। लेकिन जैसे-जैसे इन अध्यायों में आगे बढ़ते हैं बिखराव, और वैकल्पिक प्रयोगों की सूचियां देखने को मिलती हैं। ये वैकल्पिक प्रयोगों की सूचियां वैसी ही हैं जैसे किसी शोध प्रबंध के अंत में निहितार्थ, भावी सुझाव दे दिए जाते हैं। इनमें यह मान्यता अंतर्निहित है कि उच्च शिक्षा को शोधोन्मुख करना तमाम समस्याओं का हल है। हाल ही में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने भारत के विश्वविद्यालयों में हुए शोध कार्यों की

गुणवत्ता पर सवाल उठाए हैं। ऐसी स्थिति में बिना समुचित तैयारी के शोध का राग अलापना उच्च शिक्षा में वैसी ही स्थिति न पैदा कर दे जैसे प्रोजेक्टों के नाम पर माध्यमिक शिक्षा में खानापूति हो रही है। इस नीति के प्रत्येक अध्याय में पहुंच की दृष्टि से हुई प्रगति को सराहा गया है लेकिन समानता और गुणवत्ता के लिए नीति को क्रियान्वित करने पर बल दिया गया है। यह अवलोकन महत्वपूर्ण है कि प्रस्तावित नीति केवल बौद्धिक विकास द्वारा अर्जित चेतना की सीमा को रेखांकित करती है। इसी कारण पूर्व प्राथमिक से शोध स्तर तक रचनात्मक, गैर परंपरागत चिंतन, सामाजिक-नैतिक सरोकार आदि को महत्व देती है। मनुष्य कहीं रोबोट न बन जाए, कहीं उसका संस्कृति बोध कमजोर न हो, कहीं वह आत्म-केन्द्रित आर्थिक प्राणी न रह जाए, इसकी चिंता बराबर बनी हुई है। इसी चिंता से मुक्ति के लिए 'लिबरल आर्ट्स' को इस नीति में पर्याप्त स्थान दिया गया है। खासकर उच्च शिक्षा के लिए इसे अपरिहार्य कर दिया गया है। इसे उपदेशात्मक न बनाकर खुद की जिज्ञासा, अभिज्ञता और अभिरुचि के अनुरूप विकसित करने का लक्ष्य है। ऐसा जान पड़ता है कि नीति निर्माताओं का स्पष्ट मानना है कि कोरी बौद्धिकता का हृदय पक्ष से शृंगार किए बिना मानवता को सुरक्षित नहीं रखा जा सकता है। हमारे अनुभव और उदाहरण भी बताते हैं कि पिछली शताब्दी की हमारी उपलब्धियों ने बौद्धिकता और आविष्कारों के शिखर पर पहुंचाया लेकिन आपसी रिश्तों, खुद से संवाद और कलात्मक अभिरुचियों के बिना दक्ष पेशवर भी अपनी 'पूर्ण संभावनाओं' को साकार नहीं कर पा रहे हैं। अब देखना यह है कि ज्ञान आधारित समाज के लिए बनी इस नीति में कला-संस्कृति-समाज के पक्ष को संजोए लिबरल आर्ट्स किताबी हर्फ से बाहर निकल सीखने की संस्कृति का हिस्सा कैसे बनेगी? कैसे बाजार के लिए ज्ञान के शोर में ज्ञान के सामाजिक-नैतिक सरोकार व्यक्ति की चेतना में प्रकट होंगे?

औपचारिक शिक्षा और भारतीय भाषाएं

नई शिक्षा नीति के प्रारूप में भारतीय भाषाओं से संबंधित व्यापक सुझाव दिए गए हैं। इनमें भाषाओं की शिक्षा और भाषाओं द्वारा शिक्षा विषयक चार आधारभूत मान्यताएं हैं। प्रथम, भाषा संज्ञानात्मक विकास का साधन है और बच्चे स्वभावतः एक से अधिक भाषाओं को सीखने की क्षमता से युक्त होते हैं। द्वितीय, भाषा संस्कृति को आत्मसात करने और उसे विकसित करने का आगत है। इसके माध्यम से सांस्कृतिक नैरन्तर्य को समझा जा सकता है। भाषाओं का ज्ञान ही प्राचीनतम संस्कृति को समझने, आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के प्रतिमानों के विश्लेषण और 'ग्लोबल' समाज के लिए विवेकवान नागरिक विकसित कर सकता है। तृतीय, वे भाषाएं जो बाजार, रोजगार या कह लें ज्ञान आधारित अर्थव्यवस्था के लिए आवश्यक हैं उनकी उपेक्षा कर प्रतिगमन करने की आवश्यकता नहीं है। चतुर्थ, भाषाओं को पढ़ाने के तरीके इस तरह के अपनाने होंगे कि उसके लिए न तो अनुवाद के सहारे की जरूरत हो और न ही विधियां ऐसी बोझिल हो कि भाषा के सीखने में रस का लोप हो जाए। यह ध्यान रखा जाए कि भाषा शिक्षण ऐसी शिक्षण पद्धतियों से युक्त हो जहां भाषा और परिवेश के बीच कोई कृत्रिम दीवार न हो। इसके साथ-साथ विभिन्न भाषाओं में अलग-अलग ज्ञानानुशासनों के लिए पर्याप्त सामग्री तैयार की जाए। स्पष्ट है कि प्रस्तावित नीति 21 वीं सदी के भारत को समझने और उसकी जरूरतों को पूरा करने के लिए भारतीय भाषाओं की महत्ता को स्वीकार करती है। यहां रेखांकित करना आवश्यक है कि इस मसौदे में जहां-जहां भारतीय भाषाओं का संदर्भ आया है वहां इसे बहुवचन के अर्थ में, सांस्कृतिक अस्मिता के प्रतीक रूप में और सामासिक संस्कृति के लक्षण के रूप में स्थापित किया गया है। इसमें भाषाओं के लिए विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक विशेष संवर्द्धन कार्यक्रमों की व्यवस्था की गई है। उदाहरण के लिए- मातृभाषा को केन्द्र में रखकर त्रि-भाषा सूत्र का सक्रिय क्रियान्वयन, विद्यालयों में भाषा शिक्षकों की नियुक्ति के दायरे का विस्तार, अध्यापक शिक्षा में स्थानीय भाषाओं के शिक्षकों की तैयारी का प्रस्ताव, विश्वविद्यालय स्तर पर भारतीय भाषाओं के लिए अध्ययन केन्द्रों/विभागों की स्थापना, भारतीय भाषाओं को वर्तमान अकादमिक संस्कृति के आयामों जैसे- शोध, प्रकाशन और प्रसार से युक्त करना, विज्ञान शिक्षण के लिए अंग्रेजी के साथ मातृभाषा का उपयोग और भारत की शास्त्रीय भाषाओं के शिक्षण की सुविधा उपलब्ध कराना। यह नीति प्रयोजनमूलक लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए अंग्रेजी भाषा की दक्षता के विकास की संभावनाओं को भी साकार करना चाहती है। इस नीति में भाषाएं भावी पीढ़ी के लिए केवल साक्षरता के रूप में परिकल्पित नहीं हैं बल्कि भाषाओं में निहित ज्ञानराशि को समझने का माध्यम है। यह ज्ञानराशि ही वास्तविक भारत है। इसमें बर्तन बनाने वाले, लोहे का

काम करने वाले, चमड़े के शिल्पियों जैसे कामगारों के, किसानों के और आधुनिक पेशवरों के अभ्यासजन्य और अनुभवजन्य ज्ञान संचित हैं। यह बंधुत्व और सहिष्णुता की चेतना, प्रकृति से एकता, देशज विज्ञान की संपोषणीयता का माध्यम है। विडंबना है कि उक्त ज्ञानराशि राशि धीरे-धीरे हमारी शिक्षा की मुख्यधारा में संकुचित हो चुकी है। इसका ही दुष्परिणाम है कि भावी पीढ़ी अपने आनंद और पीड़ा के रंगों का चुनाव गंगा-जमुना के मैदानों, अरावली, सह्याद्री या दण्डकारण्य आदि की लोकसंस्कृति से, केरल और तमिलनाडु के मृदु-कठोर भावों से कर पाने में सक्षम नहीं है। दुर्भाग्य यह है अपनी इस अक्षमता का उसे भान तक नहीं है क्योंकि वह अपनी जरूरतों को दूसरों की भाषा से पूरा करने का प्रशिक्षण प्राप्त कर रही है। इस तरह की एक पूरी पीढ़ी ने देखा है कि अंग्रेजी न आने के कारण उसे कितनी चुनौतियों का सामना करना पड़ा। यह पूरी पीढ़ी मां-बाप की भूमिका में अपने बच्चों को उसी अंग्रेजी का संस्कार देना चाह रही है जिसकी कमी से वे जूझते रहे। दुकान से लेकर डाइनिंग टेबल तक बच्चों को अंग्रेजी के शब्दों और 'मैनेरिज़्म' का पाठ दिया जा रहा है। इस अभ्यास से लगभग हर अभिभावक खुद को आश्वस्त कर रहा है कि उसके पाल्य को आने वाले जीवन में किसी आर्थिक संकट का सामना नहीं करना पड़ेगा। ऐसी दशा में प्रस्तावित शिक्षा नीति का वाचन करते हुए बार-बार यही सवाल उपजता है कि क्या इस नीति के अनुरूप अभिभावक अपने बच्चों के लिए अंग्रेजी भाषा और माध्यम की शिक्षा के बरक्स मातृभाषा में शिक्षा को स्वीकार करेंगे? यह सवाल उस वर्ग के लिए अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है जिसकी सामाजिक गतिशीलता के लिए भाषा की सांस्कृतिक पूंजी का अभाव बड़ी समस्या है। यह सवाल केवल अभिभावकों के स्तर तक ही सीमित नहीं है। इसके समांतर अगला प्रश्न है कि क्या स्कूल नामक संस्था नवउदारवादी दबावों के बीच भारतीय भाषाओं में ज्ञान रचना के लिए तैयार हैं? इन दोनों ही सवालों के लिए अक्सर 'औपनिवेशिक' प्रभाव की दुहाई देते हुए हम पल्ला झाड़ लेते हैं। लेकिन हमें अपनी असफलता को भी स्वीकारना होगा कि आजाद भारत में मजबूत भाषा नीतियों के बावजूद पाठ्यचर्या के माध्यम और भाषा के रूप में भारतीय भाषाएं उपेक्षित हैं। इसका सरलीकृत कारण नीति का कमजोर क्रियान्वयन नहीं है बल्कि आर्थिक अवसरों, सामाजिक प्रतिष्ठा और सांस्कृतिक अभिजात्यता के नाम पर लोक जीवन का अंग्रेजीकरण है। इसके प्रभाव में भारतीय भाषाएं धीरे-धीरे अनौपचारिक कार्य-व्यापार तक सीमित होती जा रही है। वर्तमान में भाषा की एक नई समस्या है कि एक वर्ग बोलचाल, रोजमर्रा के व्यवहार और औपचारिक प्रयोग से अंग्रेजी को अपनी मातृभाषा बनाने पर तुला है। इसी वर्ग के जैसा बनने के लिए शेष समाज अपने 'सांस्कृतिकरण' के लिए उनकी भाषा को अपना रहा है। यह भाषा (अंग्रेजी) आज भी सामाजिक गतिशीलता की सीढ़ी में ऊपरी पायदान पर जाने का माध्यम है। उक्त के आलोक में इस नीति में इस सवाल का उत्तर खोजना होगा कि अंग्रेजी के सांस्कृतिक आब्रजन से निपटने के लिए भारतीय भाषाओं को कैसे समर्थ बनाया जाए? इस सवाल के जवाब के लिए दो कसौटियां हो सकती हैं। पहली, हमारी भाषाएं आधुनिक राजनीतिक-आर्थिक गठजोड़ में कितनी कारगर हैं? दूसरी, हमारे वयस्क, खासकर शिक्षित वर्ग या सिविल सोसाइटी ने अपनी-अपनी मातृभाषाओं को विचार-विश्लेषण की दृष्टि से कितना समर्थ किया है? इन दोनों सवालों के उत्तर ही प्रस्तावित शिक्षा नीति के भाषा संबंधी सुझावों की सार्थकता का प्रमाण होंगे।

प्रस्तावित शिक्षा नीति में 'भारत'

प्रस्तावित नीति में 'भारत' की संज्ञा एक राज्य के अर्थ में, अर्थव्यवस्था के अर्थ में, एक राष्ट्र के अर्थ में प्रयुक्त की गई है। इसमें भारत की प्रस्तुति या विचार निरपेक्ष या एकांगी रूप में नहीं है। यह सापेक्षिक भारत है। इस नीति की प्रस्तावना में ही 'गतिशील भारत' का उल्लेख है। इसकी गति की दशा और दिशा की चिंता पूरी नीति में व्याप्त है। नीति इस चिंता को केवल राज्य के बूते नहीं छोड़ती है बल्कि शिक्षा द्वारा हर देशवासी को समर्थ बनाने की परिकल्पना करती है। यह सामर्थ्य शक्ति संचय द्वारा विकृत न हो जाए इसलिए सामर्थ्य की परिभाषा को संवैधानिक मूल्यों से जोड़ते हुए सामाजिक न्याय सुनिश्चित करने का लक्ष्य रखा गया है। यद्यपि यह नीति शिक्षा और मूल्यों के संबंध में किसी स्पष्ट कथन या दृष्टि का उद्घाटन नहीं करती है लेकिन रिपोर्ट में संवैधानिक मूल्यों के साथ सेवा, अहिंसा, स्वच्छता, सहिष्णुता, निष्काम कर्म आदि का उल्लेख है। यह मूल्य बोध उस समय अधिक प्रासंगिक हो जाता है जब आर्थिक मानव के मॉडल के बरक्स मानव के सामाजिक-सांवेगिक विकास को महत्व दिया जाता है। इस नीति में जब भारत को आर्थिक शक्ति के रूप अमेरिका और चीन के सापेक्ष खड़ा करने की प्रतिबद्धता दर्शाई जाती है ठीक उसी

समय उन संकटों पर भी विचार किया जाता है जो एकांगी विकास के फलस्वरूप देश के सामाजिक जीवन में प्रकट हो सकते हैं। इसके लिए भारतीय शिक्षा के कलेवर को संस्कृति और परंपरा से जोड़ने का रास्ता सुझाया गया है। इस सुझाव में समस्या नहीं है समस्या इसके क्रियान्वयन में है। बहुसांस्कृतिक परिवेश में मूल्यों का चुनाव, प्रस्तुति और पोषण चयनात्मक होने पर जो संकट पैदा हो सकते हैं हमें उनके प्रति सचेत होने की जरूरत है। 21 वीं सदी की आवश्यकताओं का उल्लेख निरपेक्ष रूप से नहीं किया है उसमें 'भारतीयता' की सापेक्षता लगा दी गई है। अब देखना यह है कि सापेक्षता से हम कितना दिशा बोध ले पाते हैं? इसी उद्देश्य से इस नीति में अनेक स्थानों पर समग्र विकास, शिक्षा और शिक्षण के भारतीय प्रयोगों का उल्लेख है। लेकिन इनकी व्याख्या या संदर्भ का अभाव है। इससे एक अंतराल पैदा होता है कि हम किन दृष्टियों और प्रयोगों का संदर्भ लें? भारतीय दृष्टि की समग्रता और समावेशन की कसौटी क्या हो? इस नीति में भारतीय ज्ञान परंपरा और कलाओं का संदर्भ लेते हुए विस्तृत ज्ञानराशि का उल्लेख किया गया है। लोक कथाओं, लोक कलाओं और सीखने-सिखाने की लोक विधाओं, शिल्पों, कलाओं, भाषाओं का उल्लेख है। शिक्षा जगत में अनेक ऐसे प्रमाणिक अध्ययन हुए हैं जो स्कूली ज्ञान के सापेक्ष दैनंदिन ज्ञान देशज ज्ञान, या समुदाय निर्मित साझे ज्ञान की महत्ता बताते हैं। यह ज्ञान निश्चित रूप से स्थानीय होगा, सामुदायिक होगा, लोक में लोक द्वारा लोक की शिल्प कला और विज्ञान की प्रचलित विधियों में होगा। यह नीति इस भारतीय ज्ञान को औपचारिक शिक्षा का हिस्सा बनाने की वकालत करती है।

इस नीति में भारत के बच्चों, युवाओं, शिक्षकों लड़कियों के व्यापक चित्र को प्रस्तुत किया गया है। जान पड़ता है कि यह चित्र थोड़ा दूर से खींचा गया है इसलिए इसकी यथार्थ से समतुल्यता कम है। इसमें राज्य की संस्थाओं, योजनाओं, आंकड़ों का उल्लेख है। इनके आलोक में सफलताओं और असफलताओं का आकलन है। राज्य की कार्यपालिका और व्यवस्थापिका जैसी संस्थाओं के लिए निर्देश और सुझाव हैं। उनकी भूमिका की समीक्षा है। शिक्षा विषयक नीतियों, अभियानों और कानूनों का उल्लेख है। इनके बीच कई स्थानों पर लंबी छलांग है। प्राचीन भारत के उल्लेख के बाद सीधे 21वीं सदी पर आ जाते हैं। जबकि उसके बीच में भी इसी परंपरा की निरंतरता, उसमें नूतनता विद्यमान रही है। इस कारण आलोचकों को एक अवकाश मिलता है। वे इस पर 'चयनात्मक' होने का आरोप लगाते हैं। इस नीति में एक वैश्विक भारत नजर आता है। यह हमारे समय की सच्चाई है। यह नीति आर्थिक और शिक्षा के क्षेत्र में वैश्विक प्रतियोगिता के प्रति सचेत है। इसमें इस बात का सम्यक मूल्यांकन है कि हम कहां किन क्षेत्रों में पीछे हैं? कैसे आगे जा सकते हैं? इस मूल्यांकन में शिक्षा को धुरी माना गया है। उसके लिए समयबद्ध लक्ष्य निर्धारित किए गए हैं लेकिन 'आगे जाने' का क्या अभिप्राय है इसका अर्थ अस्पष्ट है। इसे उत्पादकता, साक्षरता और रोजगार के आंकड़ों या वित्तीय आवंटनों के सापेक्ष देखना पर्याप्त नहीं है।

एक पाठक के रूप में मैं जैसे-जैसे रिपोर्ट को पेज दर पेज पलटता गया ऐसी अनुभूति हुई कि वातानुकूलित सभा कक्ष में आधुनिक भारत के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, अर्थशास्त्री, प्रबंधक, प्रशासक पूरी तन्मयता के साथ देश के सुंदर भविष्य का सपना देख रहे हैं। प्रस्तावित मसौदा इसी सपने का एक रूमानी दस्तावेज है। मेरे मन में बार-बार सवाल आ रहा है कि वह भारतीय जिसकी बोली, भाषा, गणित, विज्ञान, अध्यात्म में 'भारतीयता' है लेकिन उसकी आवाज राज्य के प्रतिष्ठानों जैसे स्कूलों, अदालतों, दफ्तरों तक नहीं पहुंच पा रही है उसकी आने वाली पीढ़ी को क्या यह शिक्षा नीति कुछ दे पाएगी? क्या 'दक्षता' को परिभाषित करने का सांस्कृतिक नज़रिया, बाजारवादी नज़रिए के बीच अपना रास्ता तलाश पाएगा? क्या उच्च शिक्षा शोध के रास्ते मौलिक चिंतन, विश्लेषणात्मक दृष्टि और सृजनधर्मिता द्वारा ज्ञान के 'भारतीय संस्करण' की नींव डाल पाएगी? क्या 'नौकरी' के प्रयोजनमूलक लक्ष्य को 'स्वालंबन' की ताकत से स्थानान्तरित किया जा सकता है? अब जबकि औद्योगिक क्रान्ति के सामाजिक-सांस्कृतिक-पर्यावरणीय (दुष्)परिणाम, हमारे सामने हैं क्या आने वाली पीढ़ी अपने समाज के विकास के लिए नया सांस्कृतिक-राजनीतिक-आर्थिक आख्यान गढ़ पाएगी? ◆

लेखक परिचय : सहायक प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा।

संपर्क : 7057392903; rishabhrkm@gmail.com